



INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

सल्लनतकालीन मिथिला की संस्कृति एवं धार्मिक विश्वास

विजय कुमार मिश्रा

बैद्यनाथ मिश्र

ग्राम—लदारी, पो0—समैला लालगंज

भाया—केवटी, जिला—दरभंगा, बिहार

सार—संक्षेप

उपनिषद्—युग से ही मिथिला शिक्षा एवं संस्कृति का केंद्र रही है। कुरु पांचाल आदि अन्य—अन्य जगहों से दर्शन ज्ञान की चर्चा के लिए विद्वान् आया करते थे। अपने सामाजिक नियमों प्रथाओं का सर्जन जिसका प्रारंभ प्रागैतिहासिक युग में ही हो चुका था, उसका व्यावहारिक पक्ष इसी मिथिला में उजागर हुआ था। जिसका प्रत्यक्ष रूप समाज में चातुर्वर्ण एवं उपवर्णों की व्यवस्था है। इसी व्यवस्था के तहत समाज में शादी विवाह आदि से भी नियमों का पालन प्रारंभ हुआ और आज भी प्रायः समाज में अपने से उच्च वर्ण या जाति की कन्या के साथ विवाह निषेध माना जाता है। उच्च वर्णों के पुरुष तो बहुविवाह कर सकते हैं किंतु स्त्रियां नहीं। निम्न वर्णों की स्त्रियां तथा पुरुष दोनों ही एक से अधिक शादी कर सकते हैं। समाज में अपने सम्मान एवं आवरु की रक्षा हेतु पर्दा का प्रचलन है। इस प्रथा का पालन करके भीतर बाहर स्वजन परिजन सबों के लिए ग्राह्य एवं मान्य है। लोग कला एवं संगीत के प्रिय होते

हैं। चित्रकारी एवं मूर्तिकला की प्रतिष्ठा मनोरंजन के साथ—साथ जीवनोपयोगी रूप में भी अपनाया गया है। निजी आवास से लेकर देवालयों के निर्माण तक में कला प्रतिष्ठित हुई। यज्ञीय कुण्डों के निर्माण तक में कलाप्रियता का प्रत्यक्ष रूप दृष्टिगोचर होता है। समाज याज्ञवल्क्य की स्मृति से शासित होता है, इनकी मीताक्षरा आधुनिक मिथिला के हिन्दूओं की विधि व्यवस्था की रीढ़ है। इसी मीताक्षरा की अद्यावधि सर्वाधिक मान्यता मिथिला में है। धार्मिक मान्यताओं के रूप पूजा आराधना, मूर्तिपूजा, मंत्रोच्चारण, मंत्रसिद्धि, यज्ञ, हवन का विशिष्ट स्थान है। इस सगुण उपासना के साथ—साथ समाज में निर्गुण उपासना भी प्रचलित रही है।

शब्द कुंजी : संस्कृति, धार्मिक व्यवस्था, जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, कर्म

प्रस्तावना

मिथिला के मैथिल में अतिप्राचीनकाल से धार्मिक कट्टरता रुढ़िग्रस्त रही है। धर्मी, विधर्मी, देशी, विदेशी सभी प्रकार का शासन भी देश पर रहा शासन पद्धति में परिवर्तन हुआ। सरकारी काम-काज के तरीके, नियम, विधान आदि बदलते रहे। समाज पर प्रभाव डालने वाले अनेक सथक पुथल हुए फिर भी इनकी अपनी धार्मिक एवं सामाजिक नियमों की प्रतिवद्धता कट्टरता कायम ही रही।¹ ब्राह्मणों ने अपने को समाज के अन्य वर्गों से उच्चतम माना, अपने रक्त को इतर वर्गों के रक्त से पवित्र माना। नित्यकर्म, स्मृति विवाह, धार्मिक कार्य, आत्मशुद्धि यज्ञ पंच यज्ञ, कृषि, वाणिज्य, विभिन्न जातियों का अपना अपना कर्तव्य आदि पर अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ समय समय पर रचे जाते रहे हैं फिर भी इनसे प्रतिपादित सिद्धांतों, नये विचारों ने भी मैथिल समाज की कट्टरता को कम नहीं किया। उल्टे इस समाज में और भी कट्टरता एवं नियमवद्धता बढ़ती ही गयी। कर्णाटकुल नेश राजा हरिसिंह देव के शासन काल में ब्राह्मण एवं कायस्थों में कुलीन प्रथा का प्रारंभ हो गया जिसका प्रचार मिथिला से बंगाल एवं आसाम तक हुआ।² ब्राह्मणों के भी चार विभाग— श्रोत्रिय, योग्य, पंजीबद्ध, जैवार किये गये। सूर्योदय से सूर्यास्त तक अग्निहोत्र यज्ञ—याग पूजा—पाठ आदि पवित्र वैदिक एवं स्मार्त कर्म करने वाले श्रोत्रिय हुए। कुलीन प्रथा में भी ये सवोच्च स्थान पर रहे। ऐसा करके संसार के समक्ष धार्मिक आचरण के पालन में उच्च एवं आदर्श स्थापना का प्रयास किया गया।³ विवाह संबंधी नियमों के चलते पंजीकार अथवा घटक वर्ग में कायम हो गया। पंजीकरण को वैज्ञानिक पद्धति प्रदान किया गया। रक्त शुद्धता को सुरक्षित रखने की दृष्टि से इन पंजीकारों के द्वारा विवाह के अवसर पर गोत्र वंश आदि संबंधी निर्णय दिया जाता था। समाज में अग्नि—परीक्षा का प्रचलन था और संभवतया इसी का अवशेष आज भी मधुआवणी में पाया जाता है।

हरिसिंहदेव के समय में इस पंजी प्रथा को राजकीय छत्रछाया तथा प्रोत्साहन प्राप्त था। इस प्रकार पंजीकार से निर्णय लेने के पश्चात् वर पक्ष एवं कन्या पक्ष में वैवाहिक वार्ता हो जाने पर ब्राह्म विवाह पद्धति में विवाह कार्य संपन्न होता रहा है। यह कुलीन प्रथा मिथिला के कायस्थ परिवारों में भी प्रचलित हुआ। अभी तक प्रचलित प्रथा के मुताबिक ऐसा भी प्रतीत होता है कि क्षत्रियों में भी यह प्रथा मान्य थी।⁴

मधुबनी के नजदीक की सौराठ सभा (समा गाछी) इसका अभी भी ज्वलंत उदाहरण अभी भी उपलब्ध है। वैश्य तथा निम्न कोटि के लोगों की जीविका व्यवसाय कृषि रही है। कृषि में पशुपालन आवश्यक हुआ। हल—बैल के माध्यम से खेती होती रही। जतवों तथा पड़ती जमीन को खेती के योग्य बनाया जाता रहा है। प्रत्येक गृह—प्रांगण में कदली कुंज रहता था। कूप, वापी, तडाग, पुष्करिणी की भरमार रहती थी जो आज भी लगभग अपने उसी रूप में मिथिला में वर्तमान है। धनधान्य से संपन्न यह मिथिला की भूमि रही है।⁵ अन्य राज्यों के साथ वाणिज्य एवं व्यवसाय भी होता था। लगभग 1324 ई. की ज्योतिरीश्वर की वर्ण रत्नाकर के सात अध्याय— 1. नगर वर्णन, 2. नायक वर्णन, 3. स्थान वर्णन, 4. ऋतु वर्णन, 5. पणायक वर्णन, 6. महादि वर्णन तथा 7. कला वर्णन के अवलोकन से यह बात स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होती है कि आज मिथिला में जो कुछ हम देख रहे हैं वह

ग्यारहवीं शताब्दी से ही किसी न किसी रूप में चली आ रही है। ज्योतिरीश्वर के काल का समाज जिस प्रकार का था वह तद्वत् आज भी मिथिला में विद्यमान है।⁶ उन दिनों से ही समाज में चोर, चंचल, जुआर, छिनार, लगवार, पेटकट, नाक कट, कनकट आदि प्रकार के लाग होते आये हैं। वहां रत्नाकर में भी तापसि, तेलि, ताति, तिवर.....घांगल, घाक्ल, धानुक, घोओर, धुनिया डोव, चमार, गोआर.....नागर प्रभृति को मंद जातीय कहा गया है।⁷ तात्पर्य यह है कि वर्ण रत्नाकर के इस वर्णन को देखकर यह वेखटक कहा जा सकता है कि आज भी मिथिला की सामाजिक व्यवस्था पर कम से कम 600 वर्षों का प्रभाव तो है ही। दंड व्यवस्था के मातहत परपीड़क को राजाज्ञा से मृत्यु घोषित किया जाता था, कृषक की संपत्ति का अपहरण करने वाले अपराधी की सारी संपत्ति छीन ली जाती थी और उसको राज्य से निष्कासित कर दिया जाता था—

“राज्ञो हिरक्षाधिकृता परस्वदायिनः सठाः।

मृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः।

ये कार्षिकेभ्योऽथैमेवं गृहणीययुः पापचेतसः।

तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात् प्रवासनम्।।”⁸

इसी प्रकार से इसी बात को प्रमाणित करने के लिए कि आज मिथिला की सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवस्था कोई आज की नहीं वरन् अतिप्राचीन है। हम विद्यापति की कीर्तिलता में वर्णित विषय को भी देख सकते हैं।⁹ यहां कवि ने राजा गणेश राय की मृत्यु के पश्चात् की समाज अवस्था का चित्रण किया है। समाज में माण्डलिव ठाकुर चोर सब प्रकार के लोग थे। किंतु इन लोगों में भले-बूरे का विचार उठ गया था। सद्-असद् की विवेचना समाप्त हो गई थी। समाज में वैभनस्य बढ़ गया था, एकता नाम की चीज नहीं रह गयी थी। तिरहुत में चिरकाल तक अराजकता, अनुशासनहीनता तथा अनैतिकता का साम्राज्य फैला हुआ था। हिन्दूओं की दशा दयनीय हो गई थी। धार्मिक सद्भावना का लोप हो गया था। हिन्दू दास-दासियों की बिक्री धनुष वाण आदि अन्य समानों की तरह खुले बाजार में होती थी, इनकी बिक्री के लिये खासकर बाजार बसे थे— “तिरहुति तिरोहित सत्तवगुरों राए गएनेस जबे सग्न गउ।” रुपये के विनिमय करनेवाले यहां रहते थे जो अनेकानेक खासों का क्रय करते थे, बलपूर्वक बेगारी ली जाती थी। मुसलमानों का प्रभाव, एवं दबदवा छा गया था। वे हिन्दूओं, ब्राह्मणों, इनके बच्चों आदि से भी बल एवं अनीतिपूर्वक कार्य लिया करते थे। साधारण मुसलमान भी हिन्दूओं पर अपनी घौस जमाता था। उन्हें ताड़ित प्रताड़ित करता था— “धरि आनय बांमन बटुआ मधा चढ़ावए गाइक चूडुआ फोट चाट जनऊ तोड़ उमर चढ़ावए चाह घोर

हिंदू बोलि दूरहि निकार छोटे ओ तुरका ममकी मार हिन्दूहि गोइओ गिलिए हल तुरूक देखि होउ मान।”¹⁰

मिथिला की यह विशेषता रही है कि विषमता में भी समता, अनेकता में एकता, विरोध में भी एकाग्रता, उलझन एवं हर्ष में भी कलाप्रियता उद्वेग में सहनशीलता, हास में भी विकास यहां की मिट्टी की उत्पादकता तथा सभ्यता का प्रतीक रही है। और इन सभी की समग्रताओं, समष्टि में ही यहां की संस्कृति भी रक्षित एवं विकसित

होती रही है। अतः मिथिला की आधुनिक संस्कृति एवं सभ्यतादि के स्पष्ट स्वरूप तथा इसकी प्राचीनता को जानने के लिए हमें कम से कम पीछे की ओर दृष्टिपात करना ही होगा।

आधुनिक मिथिला या मिथिला की आधुनिक संस्कृति के आधार स्रोत के रूप में कम से कम मध्य-युगीन संस्कृति तक झांकने की आवश्यकता प्रतीत होती है। विद्या के साथ-साथ स्थापत्य कला, मूर्ति निर्माण, चित्र निर्माण, संगीत आदि की भी समुचित उन्नति कर्णाट तथा ओइनवार वंशीय शासन काल से ही हो चुकी थी। कलाओं के विकास को राज्याश्रय भी प्राप्त था, संगीत को राजकुल, राज-दरवार के अतिरिक्त भी लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी थी। कर्णाट कुल राज्य के संस्थापक राजा नान्यदेव स्वयं भी संगीत शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् थे जिन्होंने कई लोकप्रिय रागों को विकसित किया तथा संगीत संबंधी ग्रंथों का निर्माण किया। सरस्वती हृदयालंकार इसका प्रमाण है।¹¹

इन्होंने भारत तथा अभिनव गुप्त द्वारा प्रस्तुत रागों के अतिरिक्त भी रागों का समावेश अपने 160 रागों में किया जिनका उल्लेख संगीत रत्नाकर के रचनाकार सारंग देव ने बार बार किया है।¹² इन्होंने ग्रंथ महार्णव की भी रचना की।¹³ राजा नान्यदेव का ही पथानुसरण राजा हरिसिंह देव, विशेषराचार्य, ज्योतिरीश्वर सिंह भूपाल, जंगधर, जगन्योतिमल तथा राजतरंगिणी के रचयिता लोचन आदि गान विद्याचार्यों ने 12वीं से 17वीं शताब्दी तक किया है।¹⁴ कवि कोकिल मिथिलांचल के प्राणवान् विद्यापति, उमापति दास तथा गोविन्द दास की गेय पदावलियों में होता है और आज भी मैथिली माला विकास का आधार स्तंभ का कार्य करता है। जयदेव का गीतगोविन्द की लहरी में भी इस संगीत शास्त्र की लहर प्रवाहित होती है। और आज भी मिथिलांचल की प्रतिष्ठा भारत के अन्य प्रांतों एवं भाषाओं तथा संगीत में स्थापित करती है तथा इसी संगीत लहरी के माधुर्य में मिथिला का जनमानस आज भी अपने को सराबोर कर देता है, अमरता प्राप्त कर लेता है। स्थापत्य कला का भी विकास अपनी गति से होता रहा जिसका प्रतीक देव मंदिरों तथा निर्मित मूर्तियों में है। यद्यपि इसकी प्रतिष्ठा का श्रेय जनसाधारण की अपेक्षा नृपतियों, सामान्तों समृद्धिशाली व्यक्तियों को ही है किंतु इसका मनोरम दर्शन तथा आनंद दोहन तो निश्चित ही सर्वसाधारण करते आये हैं।

मिथिलांचल में देव मंदिरों के निर्माण इस कलाप्रियता एवं प्रचलन को देखकर डॉस्पूनर ने तो इसका नाम ही “तिरहुत मंदिर निर्माण स्थापत्य कला” कर दिया। इनका निर्माण प्रायः वर्गाकार चिकनी, साफ और बराबर चित्रों से युक्त दीवार तथा छतें, होती थी।¹⁵ बीच में मूर्तियां स्थापित की जाती थी, कलशों की स्थापना की जाती थी। मंदिर के नीचे के इसी वर्गाकार मुख्य मार्ग में मूर्ति स्थापित की जाती थी। मूर्ति को मूर्ति स्थापना हेतु बने ऊंचे चबूतरे पर रखा जाता था। शिवलिंग की स्थापना हेतु मंदिर के इसी मध्य भाग में अर्धा का निर्माण होता था। मंदिर की बाहरी आकृति का निर्माण नीचे से सीधे खड़ी रेखा में लंब रूप से होकर ऊपर जाकर मुड़ती सिकुड़ती सी नुकीली होती थी जिसके ऊपरी भाग पर कलश स्थापना की जाती थी। अन्य कार्यों के हेतु मंदिर के प्रवेश द्वार से संलग्न गोपुर का निर्माण होता था जिसमें आराम की घड़ी में पूजारी या दर्शनार्थी

बैठते थे। कथा कीतैनादि का आयोजन इसी में किया जाता था कहीं-कहीं छत धरातल सी चौड़ी भी होती थी। मंदिरों के भीतर चित्रादि अंकित किये जाते थे।

मिथिला की इस स्थापत्य कला का प्रभाव मुसलमानों पर भी पड़ा जो अभी तक दिखाई देता है। खासकर उनके पवित्र पर्व मुहर्रम के ताजिया का निर्माण भी मंदिर की शक्त में ही होता है जो नीचे से चौखुट तथा ऊपर जाकर नुकीला ही होता है और दूसरे भी मध्य भाग में ही इमाम हुसैन की कब्र या समाधि मानी जाती है। इन कलाकीर्तियों का सबतू राजा नन्यदेव की राजधानी सिमराओगढ़ के मग्नावर्ष से प्राप्त होता है। इसके राजमहल, शस्त्रागार, मंदिर आदि के अवशेषों की सुन्दर ईंटें, आधारशिलाओं की सुंदर सुदृढ़ व्यवस्था, स्तंभों पर के उत्कीर्ण अभिलेख, सुंदर एवं मनोहर नक्काशियों आदि हैं।¹⁶ ईंट भी अनेक प्रकार की बनायी जाती थी। कोई पान के पत्ते के आकार की कोई अन्य अन्य प्रकार की होती थी। इन ईंटों पर विभिन्न प्रकार के चिह्न भी पाये गये हैं। इन ईंटों पर तांत्रिक चक्रों के चिह्न भी प्राप्त होते हैं।¹⁷ इस वास्तुविधा का पता ओइनवार वंशी राजाओं की आदिकालिक राजधानी ओइनी से प्राप्त एक अतिसुंदर एवं स्पष्ट उत्कीर्ण नक्काशीयुक्त प्रस्तर खंड जो भू-गर्म से प्राप्त हुआ से भी चलता है। इसी प्रकार से मिथिला की संस्कृति का पता उनके आवासीय गृहों के निर्माण तथा उनके भीतर बाहर अंकित चित्रों से भी चलता है। खासकर मिथिला के ब्राह्मणों एवं कायस्थों की संस्कृति का एक अंग चिह्न-कला भी है जो उनके घर-द्वार, बरतन-बासन, बेना-पंखा, दौरी-मौनी, डगरा-सूप, पूजा-अर्चा की सामग्रियां आदि पर देखी जाती है। इसके साथ ही इनकी संस्कृति का पता यज्ञों यज्ञोपवीत, चूड़ाकरण, शादी-व्याह के अवसर पर घर के बाहर भीतर की दीवारों पर बने चित्रकारी से भी चलता है। छठ आदि पर्वों के हेतु बनाये गये बर्तनों शादी के अवसर पर के सजाये जाने वाले बर्तनों, आदि पर के बने चित्र भी मिथिला की चित्रकला तथा यहां के निवासियों की चित्रप्रियता के प्रमाण हैं। आमंत्रण-पत्रों, बालक की जन्म-पत्रियों के कागजों, आदि पर की गई सुन्दर सज्जा, कलश बांस-डोरी अनादि की रंगाई तथा व्यवस्था में भी मिथिला कला एवं संस्कृति ही प्रस्फुटित होती है। शादी के अवसर पर व्यवहृत होने वाला वर के माथे का मौड़ भी इसी का प्रतीक है जो दर्शकों के लिए अत्यन्त ही प्रसन्नता दायक तथा नयनाभिराम भी होता है। यज्ञों के हवन-कुण्डों की बनावट, उनकी सजावट, उसके चारों ओर से रखे गये चण्डूल चूर्ण, सिंदूर, पुष्प आदि से शास्त्र-विहित चित्रकारी, मंडपों के अनेक मांगलिक चित्रादि भी उसी मिथिला की संस्कृति तथा प्रचलित परंपरा का रूप है। यह भी स्पष्ट उल्लेख कर देना है कि मिथिला की इन चित्रकला में किसी चित्रकार का ही या किसी विशेष वर्ग का स्थान नहीं है वरन् यह तो यहां की घरेलू कला है जो खासकर गृहदेवियों ही पूरी करती है। ये गृह नारियां स्वयं ही कलाकार भी बन जाती हैं तथा भित्ति-चित्र बनाती हैं। इन चित्रों के निर्माण हेतु इन्हें कहीं बाजार से विशेष प्रकार के रंग पेंट या कुचियां भी नहीं लाना पड़ता है। ये स्वयं की बांस, खजूर आदि की कूचियां तैयार कर लेती हैं तथा दीवारों पर वृक्ष, फल, फूल, हाथी, घोड़े, कोण, त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण आदि अनेकानेक स्वरूप के चित्र बना डालती हैं जो समयानुकूलता को भी प्रदर्शित करती हैं। इन चित्रों की प्रस्तुती में लाल, गुलाबी, पीन,

नील, हरित, गेहुआ आदि रंग, फिर चावल चूर्ण अथवा उनके पीठार से तैयार किया गया श्वेत रंग सिंदूर की सहायता से सुंदर मनोरम आह्लादकारी शुभद चित्रों का निर्माण कर डालती हैं। ये स्वयं भी रंग तैयार कर लेती हैं। काला रंग की आवश्यकता पड़ने पर पोआल तृण पत्ते आदि को जलाकर उनकी राख से तैयार कर लेती हैं। इसी अवसर पर ये देवी-देवताओं, राम-सीता, राधा-कृष्ण, गौड़ी-गणेश, लक्ष्मी-गणेश, शिव-पार्वती, दुर्गा-काली आदि का भी चित्र बड़ी सुस्पष्टता एवं

कलाकारिता से प्रस्तुत कर डालती हैं। इन शुभ अवसरों पर शुभ दर्शन एवं शुभ यात्रा के मान्य प्रतीकों के अनुकूल भी मत्स्य, कपोत, नीलकंठ का चित्र भी प्रस्तुत कर लेती हैं जिनसे मिथिला की संस्कृति एवं धर्म का पता स्वतः चल जाता है।

निष्कर्ष :

मिथिला की संस्कृति में साहित्य, कला, संगीत, जीवन यापन की पद्धतियां धर्म आदि का समाहार है। मिथिला की संस्कृति वह गुलदस्ता है जिसमें साहित्य की उत्कृष्टता, कला की पराकाष्ठा संगीत की मधुरता जीवन पद्धति की उदात्तता धर्म की सहिष्णुता तथा सहृदयता एक साथ सुसज्जित सुव्यस्थित कर सजाया गया है। संस्कृति की अभिव्यक्ति वहां के रहन-सहन, प्रचलन, रस्म-रिवाज, व्यवहार आदि से होता है। मिथिला की संस्कृति एवं धार्मिक व्यवस्था अपनी उदारता अपने व्यवहार अपने ढंग, अपनी रस्म से प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं।

संदर्भ :

1. झा, म. म. परमेश्वर, 1949, मिथिला तत्व विमर्श, तरौनी दरभंगा
2. मिश्र डा. जयकान्त, 1950, इंट्रोडक्शन टू दो फोक लिटरेचर ऑफ मिथिला, इंग्लिश सेक्सन, यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद स्टडीज
3. झा, डॉ. माखन, 1979, फॉल्क लोर मैजिक एण्ड लिजेन्ट्स ऑफ मिथिला, ज्योति बी.एम. दास रोड, पटना
4. ठाकुर, डॉ. उपेन्द्र, 1956, हिस्ट्री ऑफ मिथिला, मिथिला इंस्टीच्यूट ग्रंथमाला 3 स्टडीज नं.-1
5. मुखर्जी, आर.के 1947, ऐन्सियन्ट इंडियन एजुकेशन, मैकमिलन एण्ड क., दिल्ली
6. ग्रीयर्सन, जी. ए. : ऐन इंट्रोडक्शन टू मैथिली लैंग्वेज
7. दास. आर. एस. : मिथिला दर्पण
8. मिश्रा, जे. के. : ए हिस्ट्री ऑफ लिटरेचर भा.-1
9. झा, म. म. मुकुन्द : मिथिला भाषामय इतिहास
10. ग्रीयर्सन, जी. ए. : मैथिली क्रेस्तोमेथी
11. झा, प्रो. सुरेन्द्र 'सुमन' (सम्पा), 1936, मिथिला मिहिर (मिथिलोक)
12. विद्यापति (सं. म. म. हर प्रसाद शास्त्री), 1924, कीर्ति पताक, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना-3
13. प्रमुसूरी : जैन विविध तीर्थ कल्प, मिथिला तीर्थ कल्प भाग
14. चौधरी, एच.सी. राय : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐन्सियन्ट इंडिया
15. सिंह, एस.एन. 1922, हिस्ट्री ऑफ तिरहुत फ्रॉम द ऐंसियेंट टाइम, कलकत्ता
16. झा, डा. सुभद्र (सम्पा) 1954, दि सांग्स ऑफ विद्यापति, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी